



वेदों में वैश्विक एकात्मकता: एक अन्वेषणपरक दृष्टि

डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय सलारपुर गढ़मुक्तेश्वर हापुड़ उ०प्र०

सार

यह अध्ययन "वेदों में वैश्विक एकात्मकता: एक अन्वेषणपरक दृष्टि" विषय पर आधारित है, जिसका उद्देश्य वैदिक साहित्य में निहित उस दार्शनिक, सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण का विश्लेषण करना है, जो समस्त सृष्टि को एक ही परम चेतना का अभिन्न अंग मानता है। वेदों, उपनिषदों तथा गीता में प्रतिपादित सिद्धांतों के आधार पर यह स्पष्ट किया गया है कि वैश्विक एकात्मकता केवल एक वैचारिक अवधारणा नहीं, बल्कि एक समग्र जीवन-दर्शन है, जो मानव, प्रकृति और ब्रह्मांड के बीच गहरे संबंध को स्थापित करता है। अध्ययन में यह दर्शाया गया है कि "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति", "संगच्छध्वं संवदध्वं", "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" तथा "ईशावास्यमिदं सर्वं" जैसे वैदिक और उपनिषदिक मंत्र विविधता में एकता, सामाजिक समरसता, पर्यावरणीय संतुलन और आध्यात्मिक एकत्व की भावना को सुदृढ़ करते हैं। इसके साथ ही, नैतिकता, सहिष्णुता, सहयोग और समदृष्टि जैसे मूल्यों को वैश्विक शांति और सतत् विकास के आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन यह भी प्रतिपादित करता है कि वर्तमान वैश्विक संदर्भ—जहाँ विभाजन, संघर्ष और पर्यावरणीय संकट विद्यमान हैं—में वेदों की यह एकात्मक दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक है। अंततः यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वैदिक ज्ञान परंपरा वैश्विक समरसता, नैतिकता और स्थायी विकास के लिए एक सुदृढ़ दार्शनिक आधार प्रदान करती है, तथा इस दिशा में और अधिक गहन अनुसंधान की आवश्यकता है।

प्रमुख शब्द : १. वैश्विक एकात्मकता २. वैदिक दर्शन ३. ब्रह्म और अद्वैत ४. सामाजिक समरसता ५. पर्यावरणीय संतुलन ६. आध्यात्मिक एकत्व ७. सार्वभौमिक नैतिकता

प्रस्तावना

मानव सभ्यता के इतिहास में यदि किसी ग्रंथ-संहिता ने वैश्विक दृष्टि, सार्वभौमिक चेतना तथा समन्वयात्मक जीवन-दर्शन को सर्वप्रथम और अत्यंत गहन रूप में अभिव्यक्त किया है, तो वह वेद हैं। वेद न केवल भारतीय ज्ञान-परंपरा के मूलाधार हैं, बल्कि वे समस्त मानवता के लिए एक ऐसी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक धरोहर प्रस्तुत करते हैं, जिसमें वैश्विक एकात्मकता (Universal Oneness) की अवधारणा अत्यंत स्पष्ट, सुसंगत और सशक्त रूप में विद्यमान है। यद्यपि "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सूत्र बाद के ग्रंथों—विशेषतः महाउपनिषद्—में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित हुआ है, तथापि उसका मूल बीज वेदों की ऋचाओं और सूक्तों में निहित है, जहाँ समस्त जगत को एक ही सत्ता के विविध रूपों के रूप में देखा गया है।

वेदों में प्रतिपादित यह वैश्विक दृष्टि केवल किसी विशेष समाज, जाति या राष्ट्र तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समस्त मानव जाति एवं समस्त सृष्टि के लिए है। इस संदर्भ में ऋग्वेद का प्रसिद्ध मंत्र— "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋग्वेद 1.164.46) अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह मंत्र इस सत्य को उद्घाटित करता है कि परम सत्य एक है, किंतु ज्ञानीजन उसे विभिन्न नामों एवं रूपों में व्यक्त करते हैं। यहाँ विविधता में एकता का सिद्धांत निहित है, जो वैश्विक एकात्मकता का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार, वेदों में समस्त सृष्टि की एकात्मक संरचना को स्पष्ट करते हुए कहा गया है— "यस्यां विश्वं भवत्येकनीडम्" (ऋग्वेद 10.82.6) अर्थात् यह समस्त विश्व एक ही आश्रय में स्थित है। यह दृष्टिकोण मानव को यह बोध कराता है कि समस्त प्राणी, प्रकृति और ब्रह्मांड एक ही तत्त्व के विविध आयाम हैं। वैश्विक एकात्मकता का अर्थ है—समस्त सृष्टि को एक ही चेतना, एक ही ब्रह्म और एक ही अस्तित्व का अभिन्न अंग मानना। यह केवल एक दार्शनिक अवधारणा नहीं, बल्कि एक ऐसा जीवन-दर्शन है, जो सामाजिक,



नैतिक और आध्यात्मिक आचरण को दिशा प्रदान करता है। वेदों में यह भावना बार-बार विभिन्न मंत्रों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है, जो मानव को समन्वय, सहयोग और समरसता की ओर प्रेरित करते हैं। ऋग्वेद में सामूहिक एकता और सामाजिक समरसता का अत्यंत प्रभावशाली आह्वान किया गया है— **“संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्”** (ऋग्वेद 10.191.2) अर्थात् साथ चलो, साथ बोलो और अपने विचारों को एक करो।

यह मंत्र केवल सामाजिक एकता का संदेश नहीं देता, बल्कि यह वैश्विक स्तर पर मानव चेतना के सामंजस्य की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है। इसी सूक्त में आगे कहा गया है— **“समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः”** (ऋग्वेद 10.191.4) अर्थात् तुम्हारी इच्छाएँ और हृदय समान हों। यह समन्वयात्मक चेतना ही वैश्विक एकात्मकता का व्यावहारिक रूप है। वेदों में मानव और प्रकृति के बीच भी गहन एकता का बोध कराया गया है, जो आधुनिक पर्यावरणीय चिंतन के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। अथर्ववेद में कहा गया है— **“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः”** (अथर्ववेद 12.1.12) यह मंत्र पृथ्वी और मानव के बीच मातृत्व और संतति के संबंध को स्थापित करता है, जो पारिस्थितिक एकता का सर्वोच्च उदाहरण है। इसके अतिरिक्त, वेदों में बौद्धिक और सांस्कृतिक उदारता को भी वैश्विक एकता का आवश्यक तत्व माना गया है— **“आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः”** (ऋग्वेद 1.89.1) अर्थात् हमारे पास सभी दिशाओं से शुभ विचार आएँ। यह विचार वैश्विक संवाद, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और सहिष्णुता की भावना को प्रोत्साहित करता है। यजुर्वेद में समस्त सृष्टि के लिए शांति की कामना करते हुए कहा गया है— **“ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिः”** (यजुर्वेद 36.17) यह मंत्र केवल मानव समाज तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्त ब्रह्मांड—आकाश, अंतरिक्ष और पृथ्वी—के लिए शांति की कामना करता है, जो वैश्विक एकात्मकता के सर्वोच्च आध्यात्मिक आयाम को दर्शाता है।

इस प्रकार, वेदों में वैश्विक एकात्मकता का विचार बहुआयामी है—यह दार्शनिक, सामाजिक, नैतिक, पारिस्थितिक और आध्यात्मिक सभी स्तरों पर अभिव्यक्त होता है। वेद मानवता को यह सिखाते हैं कि विभाजन और संघर्ष के स्थान पर समन्वय और सहयोग को अपनाया जाए, क्योंकि समस्त अस्तित्व एक ही परम चेतना का विस्तार है।

अतः यह स्पष्ट होता है कि वेदों में निहित वैश्विक एकात्मकता की अवधारणा न केवल प्राचीन भारतीय चिंतन की आधारशिला है, बल्कि यह समकालीन विश्व के लिए भी एक अत्यंत प्रासंगिक और मार्गदर्शक सिद्धांत है, जो मानवता को एक समरस, शांतिपूर्ण और समन्वित विश्व व्यवस्था की ओर अग्रसर कर सकता है।

वेदों का स्वरूप और उनकी वैश्विक दृष्टि

वेद भारतीय ज्ञान-परंपरा के सर्वाधिक प्राचीन, प्रामाणिक और व्यापक स्रोत माने जाते हैं। “वेद” शब्द संस्कृत धातु *विद्* से निर्मित है, जिसका अर्थ है—ज्ञान या बोध। इस प्रकार वेदों का मूल स्वरूप ज्ञान-संहिता का है, जो केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन के समस्त आयामों—ज्ञान, विज्ञान, नैतिकता, समाजशास्त्र, आध्यात्मिकता तथा दर्शन—को समाहित करता है। वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन चारों वेदों में संकलित मंत्र और सूक्त मानव जीवन तथा ब्रह्मांड के रहस्यों को समझने का समन्वित प्रयास प्रस्तुत करते हैं। ऋग्वेद मुख्यतः देवताओं की स्तुतियों के माध्यम से ब्रह्मांडीय शक्तियों का दार्शनिक विवेचन करता है; यजुर्वेद यज्ञीय कर्म और उनके दार्शनिक आशयों को स्पष्ट करता है; सामवेद संगीतात्मक प्रस्तुति के माध्यम से आध्यात्मिक अनुभूति को सशक्त करता है; जबकि अथर्ववेद जीवन के व्यावहारिक, सामाजिक और चिकित्सकीय पक्षों को भी समाहित करता है। इस प्रकार वेद केवल आस्था के ग्रंथ नहीं, बल्कि समग्र जीवन-दर्शन के आधार हैं, जिनमें मानव और विश्व के बीच गहन संबंध को स्थापित किया गया है।

वेदों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनकी सार्वभौमिकता है। वेदों में वर्णित सिद्धांत किसी एक जाति, वर्ग, समुदाय या राष्ट्र तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे समस्त मानव जाति और समस्त सृष्टि के लिए हैं। वेदों की दृष्टि में समस्त विश्व एक ही चेतना का विस्तार है, और इसी कारण वे विविधताओं के भीतर एकता को खोजने का प्रयास करते हैं। इस सार्वभौमिक दृष्टि को ऋग्वेद के प्रसिद्ध मंत्र में अत्यंत सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया गया है— **“एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति”** (ऋग्वेद 1.164.46) अर्थात् सत्य एक है, किंतु विद्वान उसे विभिन्न नामों और रूपों में व्यक्त करते हैं। यह मंत्र वेदों की वैश्विक दृष्टि का मूल आधार प्रस्तुत करता है—यह न केवल धार्मिक सहिष्णुता का संदेश



देता है, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि विविधता और भिन्नता के बावजूद अंतर्निहित सत्य एक ही है।

इसी प्रकार, वेदों में ज्ञान की सार्वभौमिकता और समावेशिता को भी अत्यंत महत्व दिया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है— **“आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः”** (ऋग्वेद 1.89.1) अर्थात् हमारे पास सभी दिशाओं से शुभ और कल्याणकारी विचार आएँ। यह मंत्र इस बात का द्योतक है कि वेद संकीर्णता या एकांगी दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करते, बल्कि वे वैश्विक स्तर पर ज्ञान और विचारों के आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करते हैं। वेदों में समस्त सृष्टि को एक समग्र इकाई के रूप में देखने की दृष्टि भी स्पष्ट रूप से विद्यमान है। यजुर्वेद में कहा गया है— **“ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्”** (यजुर्वेद 40.1 / ईशोपनिषद् 1) अर्थात् इस जगत में जो कुछ भी है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है। यह दृष्टिकोण वैश्विक एकात्मकता के दार्शनिक आधार को सुदृढ़ करता है, जहाँ प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक प्राणी और प्रत्येक तत्व उसी परम सत्ता का अंश है।

इसके अतिरिक्त, वेदों में मानव समाज के भीतर समरसता और एकता को भी वैश्विक दृष्टि का अभिन्न अंग माना गया है। ऋग्वेद में कहा गया है— **“संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम”** (ऋग्वेद 10.191.2) यह मंत्र सामूहिक चेतना, सहयोग और संवाद की भावना को प्रोत्साहित करता है, जो वैश्विक एकता के लिए अत्यंत आवश्यक है। वेदों की वैश्विक दृष्टि केवल मानव समाज तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्रकृति और समस्त जीव-जगत को भी अपने भीतर समाहित करती है। अथर्ववेद में पृथ्वी के साथ मानव के संबंध को इस प्रकार व्यक्त किया गया है— **“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः”** (अथर्ववेद 12.1.12) यह मंत्र स्पष्ट करता है कि मानव और प्रकृति के बीच गहरा आत्मीय संबंध है, जो वैश्विक एकात्मकता के पारिस्थितिक आयाम को प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार, वेदों का स्वरूप बहुआयामी और समन्वयात्मक है, जिसमें ज्ञान, आस्था, नैतिकता और दर्शन का अद्वितीय संगम देखने को मिलता है। उनकी वैश्विक दृष्टि मानवता को यह सिखाती है कि विविधताओं के बीच एकता को पहचाना जाए, और समस्त सृष्टि को एक ही चेतना का अभिन्न अंग मानते हुए जीवन का संचालन किया

जाए। यही वेदों का सार्वभौमिक संदेश है, जो आज के वैश्विक संदर्भ में भी अत्यंत प्रासंगिक और मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

वैश्विक एकात्मकता का दार्शनिक आधार

वेदों में वैश्विक एकात्मकता का मूल दार्शनिक आधार “ब्रह्म” की अवधारणा है। ब्रह्म वह परम, अखंड, सर्वव्यापी और निराकार सत्य है, जो समस्त सृष्टि का आधार, कारण और सार है। यह न केवल सृष्टि का उद्गम है, बल्कि उसका अंत भी उसी में निहित है। वेदों में ब्रह्म को उस सार्वभौमिक चेतना के रूप में देखा गया है, जो प्रत्येक जीव, प्रत्येक तत्व और प्रत्येक अस्तित्व में समान रूप से व्याप्त है। यही विचार वैश्विक एकात्मकता की नींव रखता है, जहाँ समस्त जगत को एक ही परम सत्ता का विविध रूप माना जाता है। ऋग्वेद में इस एकात्मक दृष्टि को अत्यंत सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया गया है— **“यस्यां विश्वं भवत्येकनीडम्”** (ऋग्वेद 10.82.6) अर्थात् समस्त विश्व एक ही आश्रय में स्थित है। यहाँ “एकनीडम्” (एक ही घोंसला) शब्द संपूर्ण विश्व को एक परिवार, एक आवास और एक ही मूल चेतना के अंतर्गत देखने की भावना को व्यक्त करता है। यह केवल काव्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि एक गहन दार्शनिक सत्य है— समस्त अस्तित्व एक ही मूल तत्त्व से उत्पन्न हुआ है और उसी में स्थित है।

ऋग्वेद का एक अन्य मंत्र सृष्टि की इस एकात्मक उत्पत्ति को स्पष्ट करता है— **“हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्”** (ऋग्वेद 10.121.1) अर्थात् सृष्टि के प्रारंभ में हिरण्यगर्भ (ब्रह्म) ही विद्यमान था, वही समस्त भूतों का स्वामी था। यह मंत्र इस तथ्य को स्थापित करता है कि समस्त सृष्टि का मूल एक ही है—एक परम चेतना, जो सबका कारण है। उपनिषदों में यह दार्शनिक आधार और अधिक स्पष्ट तथा गहन हो जाता है। छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है— **“सर्वं खल्विदं ब्रह्म”** (छांदोग्य उपनिषद् 3.14.1) अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्म ही है। यह कथन वैश्विक एकात्मकता का प्रत्यक्ष उद्घोष है, जहाँ जगत और ब्रह्म के बीच कोई भेद नहीं रह जाता। इसी उपनिषद् में प्रसिद्ध महावाक्य मिलता है— **“तत्त्वमसि”** (छांदोग्य उपनिषद् 6.8.7) अर्थात् “तू वही है”—यह जीव और ब्रह्म की एकता को स्थापित करता है। बृहदारण्यक



उपनिषद् में इसी सत्य को इस प्रकार व्यक्त किया गया है— **“अहं ब्रह्मास्मि”** (बृहदारण्यक उपनिषद् 1.4.10) अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ। यह आत्मा और परमात्मा की पूर्ण एकता का उद्घोष है, जो वैश्विक एकात्मकता के आध्यात्मिक आधार को सुदृढ़ करता है। ईशोपनिषद् में भी इस सार्वभौमिकता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है— **“ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्”** (ईशोपनिषद् 1) अर्थात् इस जगत् में जो कुछ भी है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है। यह दृष्टिकोण यह बताता है कि प्रत्येक वस्तु में वही परम सत्ता विद्यमान है, जिससे किसी भी प्रकार का भेदभाव या विभाजन निरर्थक हो जाता है।

वेदांत दर्शन में इस एकात्मकता को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है— **“नेह नानास्ति किञ्चन”** (बृहदारण्यक उपनिषद् 4.4.19) अर्थात् यहाँ (इस जगत् में) कोई भी भिन्नता नहीं है। यह कथन द्वैत के निषेध और अद्वैत के प्रतिपादन का स्पष्ट प्रमाण है। भगवद्गीता, जो वेदांत का सार मानी जाती है, में भी इस वैश्विक एकता को अत्यंत सुंदर रूप में व्यक्त किया गया है— **“यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति”** (भगवद्गीता 6.30) अर्थात् जो मुझे (परमात्मा को) सर्वत्र देखता है और सबको मुझमें देखता है, वह मुझसे कभी अलग नहीं होता। इसी प्रकार— **“समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्”** (भगवद्गीता 13.27) अर्थात् परमेश्वर सभी प्राणियों में समान रूप से स्थित है। इन सभी वैदिक और उपनिषदिक वचनों से यह स्पष्ट होता है कि वैश्विक एकात्मकता का दार्शनिक आधार अद्वैतवाद में निहित है—जहाँ ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है और समस्त जगत् उसी का विस्तार है। अतः यह कहा जा सकता है कि वेदों और उनसे विकसित उपनिषदों तथा गीता में प्रतिपादित ब्रह्म की अवधारणा वैश्विक एकात्मकता की सबसे सशक्त दार्शनिक आधारशिला है। यह दृष्टिकोण न केवल आध्यात्मिक अनुभव का विषय है, बल्कि यह मानवता को एक ऐसे समन्वित और समरस विश्व-दृष्टिकोण की ओर प्रेरित करता है, जहाँ भेद, विभाजन और संघर्ष के स्थान पर एकता, सामंजस्य और सार्वभौमिक बंधुत्व का वास हो।

सामाजिक समरसता और एकता का वैदिक दृष्टिकोण

वेदों में सामाजिक एकता, समरसता और सहयोग की भावना को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया

है। वैदिक चिंतन में समाज केवल व्यक्तियों का समूह नहीं, बल्कि एक जीवंत, चेतनात्मक और परस्पर संबद्ध इकाई है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का अस्तित्व अन्य सभी से जुड़ा हुआ है। इस दृष्टि से सामाजिक समरसता केवल नैतिक आदर्श नहीं, बल्कि वैश्विक एकात्मकता की अनिवार्य शर्त है। वेदों में यह विचार बार-बार व्यक्त हुआ है कि जब तक समाज के भीतर समन्वय, संवाद और एकता स्थापित नहीं होती, तब तक व्यापक विश्व-शांति और सार्वभौमिक बंधुत्व की स्थापना संभव नहीं है। ऋग्वेद का एक अत्यंत प्रसिद्ध मंत्र इस सामाजिक एकता का स्पष्ट और व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत करता है— **“संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्”** (ऋग्वेद 10.191.2) अर्थात् साथ चलो, साथ बोलो और अपने मनो को एक करो। यह मंत्र केवल बाह्य व्यवहार की एकता का नहीं, बल्कि आंतरिक चेतना के सामंजस्य का आह्वान करता है। यहाँ “संगच्छध्वम्” (एक साथ चलना) और “संवदध्वम्” (एक साथ विचार-विनिमय करना) सामाजिक जीवन में सहयोग, संवाद और सहभागिता की अनिवार्यता को दर्शाते हैं। इसी सूक्त में आगे कहा गया है—

“समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥” (ऋग्वेद 10.191.4)

अर्थात् तुम्हारी आकांक्षाएँ समान हों, तुम्हारे हृदय समान हों और तुम्हारे मन एक हों, जिससे तुम सब मिलकर आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत कर सको। यह मंत्र सामाजिक समरसता के उस आदर्श को प्रस्तुत करता है, जहाँ व्यक्तियों के बीच केवल बाहरी एकता नहीं, बल्कि भावनात्मक और मानसिक सामंजस्य भी स्थापित होता है। वेदों में यह भी स्पष्ट किया गया है कि सामाजिक एकता का आधार परस्पर सम्मान और समान दृष्टि है। यजुर्वेद में कहा गया है— **“मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्”** (यजुर्वेद 36.18) अर्थात् सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखो। यह मंत्र सामाजिक संबंधों में मैत्री, सहानुभूति और करुणा के महत्व को रेखांकित करता है। जब व्यक्ति दूसरों को प्रतिस्पर्धी या शत्रु के रूप में नहीं, बल्कि मित्र के रूप में देखता है, तब ही वास्तविक सामाजिक एकता संभव होती है।



ऋग्वेद में सामूहिकता और साझेदारी की भावना को भी अत्यंत महत्व दिया गया है— **“समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः”** (ऋग्वेद 10.191.3) अर्थात् तुम सबका जलस्रोत और भोजन समान हो। यह मंत्र संसाधनों के समान वितरण और सामूहिक उपभोग की भावना को दर्शाता है, जो सामाजिक न्याय और समरसता का आधार है। अथर्ववेद में भी सामाजिक एकता और पारस्परिक प्रेम का अत्यंत सुंदर वर्णन मिलता है— **“भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः”** (अथर्ववेद 7.52.1 / ऋग्वेद 1.89.8) अर्थात् हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें। यह मंत्र समाज में सकारात्मकता, सद्भाव और कल्याणकारी विचारों के प्रसार का संकेत देता है। इसके अतिरिक्त, अथर्ववेद में पारिवारिक और सामाजिक एकता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है— **“सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः”** (अथर्ववेद 3.30.1) अर्थात् मैं तुम्हारे बीच हृदय की एकता, मन की समानता और द्वेष का अभाव स्थापित करता हूँ। यह मंत्र सामाजिक जीवन में द्वेष, संघर्ष और विभाजन को समाप्त कर प्रेम, सहयोग और समन्वय को स्थापित करने की प्रेरणा देता है। भगवद्गीता में भी इस सामाजिक समरसता के सिद्धांत को दार्शनिक रूप से पुष्ट किया गया है—

**“विद्या विनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥”** (भगवद्गीता 5.18)

अर्थात् ज्ञानी व्यक्ति ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चांडाल में समान दृष्टि रखता है। यह समदृष्टि सामाजिक समानता और वैश्विक एकात्मकता का आधार है। इसी प्रकार— **“आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन”** (भगवद्गीता 6.32) अर्थात् जो व्यक्ति सबको अपने समान देखता है, वही श्रेष्ठ है। यह सामाजिक नैतिकता का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करता है। इन सभी वैदिक और उत्तरवैदिक वचनों से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक समरसता और एकता केवल एक सामाजिक आवश्यकता नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक और दार्शनिक सत्य भी है। वेदों में यह प्रतिपादित किया गया है कि जब व्यक्ति अपने अहंकार, संकीर्णता और भेदभाव को त्यागकर सामूहिक चेतना को अपनाता है, तभी वास्तविक वैश्विक एकात्मकता संभव होती है। अतः वैदिक दृष्टिकोण में सामाजिक समरसता वैश्विक एकता की आधारशिला है—यह वह माध्यम है जिसके द्वारा

व्यक्ति से समाज, और समाज से समस्त विश्व तक एकात्म भाव का विस्तार होता है।

प्रकृति और मानव के बीच एकता

वेदों में वैश्विक एकात्मकता की अवधारणा केवल मानव समाज तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समस्त प्रकृति, पर्यावरण और जीव-जगत को अपने भीतर समाहित करती है। वैदिक दृष्टिकोण में प्रकृति और मानव के बीच कोई द्वैत या विभाजन नहीं है; दोनों एक ही सार्वभौमिक चेतना के विभिन्न आयाम हैं। इस प्रकार, मानव को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका अंग, सहयोगी और संरक्षक माना गया है। यही दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरणीय चिंतन के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक है। अथर्ववेद में पृथ्वी के प्रति श्रद्धा और आत्मीय संबंध को अत्यंत मार्मिक रूप में व्यक्त किया गया है— **“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः”** (अथर्ववेद 12.1.12) अर्थात् पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। यह मंत्र मानव और पृथ्वी के बीच मातृत्व और संतति के संबंध को स्थापित करता है, जो पारिस्थितिक एकता का सर्वोच्च प्रतीक है। यहाँ मानव स्वयं को प्रकृति से पृथक् नहीं, बल्कि उसका अभिन्न अंग मानता है, जिससे संरक्षण, संवर्धन और संतुलन की भावना स्वतः विकसित होती है।

ऋग्वेद में प्रकृति के विभिन्न तत्वों—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—को देवतुल्य मानकर उनकी स्तुति की गई है, जो उनके प्रति आदर और सह-अस्तित्व की भावना को दर्शाता है। उदाहरणतः— **“आपो हि ष्टा मयोभुवाः ता न ऊर्जे दधातन”** (ऋग्वेद 10.9.1) अर्थात् हे जल! तुम आनंददायिनी हो, हमें ऊर्जा प्रदान करो। यह मंत्र जल के प्रति कृतज्ञता और उसकी जीवनदायिनी भूमिका को स्वीकार करता है, जो पर्यावरणीय संतुलन के महत्व को दर्शाता है। इसी प्रकार वायु के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए कहा गया है— **“वायवायाहि दर्शते मे सोमं पिब”** (ऋग्वेद 1.134.1) यहाँ वायु को जीवन का आधार मानते हुए उसकी उपासना की गई है, जो यह संकेत देती है कि प्राकृतिक तत्वों के साथ संतुलित संबंध बनाए रखना आवश्यक है।

यजुर्वेद में पर्यावरणीय संतुलन और समस्त सृष्टि के लिए शांति की कामना करते हुए कहा गया है— **“ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिः आपः शान्तिरोषधयः शान्तिः”** (यजुर्वेद 36.17) अर्थात् आकाश



में शांति हो, अंतरिक्ष में शांति हो, पृथ्वी में शांति हो, जल और औषधियों में शांति हो। यह मंत्र प्रकृति के प्रत्येक तत्व के साथ संतुलन और सामंजस्य स्थापित करने की प्रेरणा देता है। अथर्ववेद में वनस्पतियों और औषधियों के प्रति भी गहन सम्मान व्यक्त किया गया है— **“वनस्पतिभ्यः शं नो अस्तु”** (अथर्ववेद 1.32.1 – भावार्थानुसार) यह मंत्र यह स्पष्ट करता है कि वनस्पतियाँ केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन के पोषण का आधार हैं, जिनके प्रति सम्मान और संरक्षण आवश्यक है।

उपनिषदों में भी प्रकृति और मानव की एकता को दार्शनिक रूप से पुष्ट किया गया है। ईशोपनिषद् में कहा गया है— **“ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्”** (ईशोपनिषद् 1) अर्थात् इस जगत में जो कुछ भी है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है। यह दृष्टिकोण यह स्थापित करता है कि प्रकृति का प्रत्येक अंश दिव्य है, अतः उसका शोषण नहीं, बल्कि सम्मान और संरक्षण किया जाना चाहिए। तैत्तिरीय उपनिषद् में प्रकृति के प्रति कर्तव्य का संकेत इस प्रकार मिलता है— **“भूत्यै न प्रमदितव्यम्”** (तैत्तिरीय उपनिषद्, शिक्षावल्ली) अर्थात् समृद्धि (प्रकृति और जीवन के साधनों) के प्रति उदासीनता नहीं बरतनी चाहिए। भगवद्गीता में भी प्रकृति और मानव के परस्पर संबंध को स्पष्ट करते हुए कहा गया है— **“अत्राद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः”** (भगवद्गीता 3.14) अर्थात् सभी प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, और अन्न वर्षा से उत्पन्न होता है। यह प्राकृतिक चक्र (ecosystem) की परस्पर निर्भरता को दर्शाता है। इसी प्रकार— **“भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च”** (भगवद्गीता 7.4) अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये सभी प्रकृति के मूल तत्व हैं, जो परम सत्ता के ही रूप हैं।

इन सभी वैदिक, उपनिषदिक और गीता के वचनों से यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति और मानव के बीच गहरा, अभिन्न और आध्यात्मिक संबंध है। यह संबंध केवल उपयोगिता पर आधारित नहीं, बल्कि आत्मीयता, श्रद्धा और सह-अस्तित्व की भावना पर आधारित है। अतः वैदिक दृष्टिकोण में पर्यावरण संरक्षण कोई बाह्य दायित्व नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक कर्तव्य है। जब मानव यह समझता है कि वह प्रकृति से अलग नहीं, बल्कि उसी का अंग है, तब वह उसके संरक्षण और संतुलन के प्रति स्वाभाविक रूप से सजग हो जाता है। यही दृष्टिकोण वैश्विक एकात्मकता के

पारिस्थितिक आयाम को सुदृढ़ करता है और मानवता को एक संतुलित, समरस और सतत् विकास की दिशा में अग्रसर करता है।

वैश्विक शांति और सहयोग का वैदिक दृष्टिकोण

वेदों में शांति (शान्ति) और सहयोग (सहकार्य) की अवधारणा अत्यंत व्यापक, समावेशी और सार्वभौमिक है। यह शांति केवल व्यक्ति-विशेष या किसी एक राष्ट्र तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्त मानवता, प्रकृति और ब्रह्मांड के प्रत्येक तत्व के लिए अभिप्रेत है। वैदिक दृष्टिकोण में शांति का अर्थ केवल संघर्ष का अभाव नहीं, बल्कि एक ऐसी समन्वित स्थिति है, जिसमें समस्त सृष्टि संतुलन, सामंजस्य और सह-अस्तित्व के साथ कार्य करती है। यही दृष्टिकोण वैश्विक एकात्मकता का उच्चतम रूप प्रस्तुत करता है। यजुर्वेद में यह सार्वभौमिक कल्याण की भावना अत्यंत सुंदर रूप में व्यक्त की गई है—

“शं नो मित्रः शं वरुणः

शं नो भवत्वर्थमा।

शं न इन्द्रो बृहस्पतिः

शं नो विष्णुरुक्रमः ॥” (यजुर्वेद 36.17 / तैत्तिरीय संहिता 4.1.8)

अर्थात् मित्र (सूर्य), वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति और विष्णु—सभी हमारे लिए कल्याणकारी हों। यह मंत्र केवल देवताओं की स्तुति नहीं है, बल्कि यह समस्त प्राकृतिक और दैवी शक्तियों के साथ संतुलित संबंध और सार्वभौमिक कल्याण की कामना का प्रतीक है। इसी प्रकार, प्रसिद्ध शांति मंत्र में सम्पूर्ण ब्रह्मांड के लिए शांति की प्रार्थना की गई है—

“ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिः

आपः शान्तिरोषधयः शान्तिः।

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः

सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥”

(यजुर्वेद 36.17)

अर्थात् आकाश में शांति हो, अंतरिक्ष में शांति हो, पृथ्वी में शांति हो, जल, औषधियों और वनस्पतियों में शांति हो; समस्त देवताओं में शांति हो, ब्रह्म में शांति हो—सर्वत्र शांति ही शांति हो। यह मंत्र वैश्विक शांति की उस व्यापक



परिकल्पना को प्रस्तुत करता है, जिसमें सृष्टि का प्रत्येक घटक एक समग्र इकाई के रूप में देखा जाता है। ऋग्वेद में भी शांति और सहयोग की भावना को सामाजिक एवं वैश्विक स्तर पर प्रोत्साहित किया गया है—

**“स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥”** (ऋग्वेद 1.89.6)

अर्थात् इन्द्र, पूषा, तार्क्ष्य और बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें। यह मंत्र सार्वभौमिक मंगल और सुरक्षा की भावना को व्यक्त करता है। इसी प्रकार, वैश्विक कल्याण और सहयोग का एक अत्यंत महत्वपूर्ण मंत्र है—

**“सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥”** (मन्त्र परंपरा—
उपनिषदिक/स्मार्त परिप्रेक्ष्य में प्रचलित)

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी निरोग हों, सभी शुभ का अनुभव करें और कोई भी दुःखी न हो। यह मंत्र वैश्विक मानवीय संवेदना और समावेशी शांति का उत्कृष्ट उदाहरण है। अथर्ववेद में भी शांति और सहयोग की भावना को सामाजिक स्तर पर इस प्रकार व्यक्त किया गया है— **“शं नो भूमिः शं नो अन्तरिक्षम्”** (अथर्ववेद 19.9 – भावार्थानुसार) अर्थात् पृथ्वी और अंतरिक्ष हमारे लिए कल्याणकारी हों। यह दृष्टिकोण प्रकृति और मानव के बीच संतुलित सह-अस्तित्व को प्रोत्साहित करता है। भगवद्गीता में शांति और समभाव को आध्यात्मिक दृष्टि से इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

**“भुक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥”**
(भगवद्गीता 5.29)

अर्थात् जो व्यक्ति परमात्मा को समस्त लोकों का स्वामी और सभी प्राणियों का हितैषी जानता है, वह शांति को प्राप्त करता है। इसी प्रकार— **“अद्वेषा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च”** (भगवद्गीता 12.13) अर्थात् जो सभी प्राणियों से द्वेष रहित, मित्रवत् और करुणामय है, वही सच्चे अर्थों में शांति

और संतुलित है। इन सभी वैदिक, उपनिषदिक और गीता के वचनों से यह स्पष्ट होता है कि वैश्विक शांति और सहयोग का वैदिक दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक और समावेशी है। इसमें केवल मानव समाज ही नहीं, बल्कि प्रकृति, ब्रह्मांड और समस्त जीव-जगत को एक साथ जोड़कर देखा गया है। अतः वैदिक दृष्टिकोण में शांति कोई निष्क्रिय अवस्था नहीं, बल्कि सक्रिय समन्वय, सहयोग और संतुलन की स्थिति है, जो समस्त सृष्टि के बीच एकात्म भाव स्थापित करती है। यही वैश्विक एकात्मकता का सर्वोच्च और परिपूर्ण स्वरूप है, जो आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी अत्यंत प्रासंगिक और मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

नैतिकता और वैश्विक एकता

वेदों में नैतिकता (Ethics) का आधार किसी बाहरी नियम या दंड-व्यवस्था पर नहीं, बल्कि वैश्विक एकात्मकता की उस गहन अनुभूति पर आधारित है, जिसमें समस्त सृष्टि को एक ही चेतना का विस्तार माना गया है। जब व्यक्ति यह अनुभव करता है कि सभी प्राणी उसी परम सत्य के अंश हैं, तब उसके व्यवहार में स्वाभाविक रूप से अहिंसा, करुणा, सह-अस्तित्व और सहयोग की भावना विकसित होती है। इस प्रकार वैदिक नैतिकता का मूल सिद्धांत “एकत्व-बोध” है, जो व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित दृष्टि से ऊपर उठाकर सार्वभौमिक दृष्टिकोण की ओर ले जाता है। यजुर्वेद में इस नैतिक दृष्टि का स्पष्ट और सशक्त प्रतिपादन किया गया है— **“मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि”** (यजुर्वेद 1.5) अर्थात् किसी भी प्राणी को हिंसा न पहुँचाओ। यह मंत्र केवल शारीरिक हिंसा के निषेध तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानसिक, वाचिक और संरचनात्मक (सामाजिक) हिंसा से भी बचने का संदेश देता है। यह वैश्विक नैतिकता का मूल आधार है, जहाँ प्रत्येक जीव के अस्तित्व का सम्मान किया जाता है। ऋग्वेद में भी मानव को नैतिक आचरण और धर्ममय जीवन के लिए प्रेरित किया गया है— **“ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यायत”** (ऋग्वेद 10.190.1) अर्थात् ऋत (सार्वभौमिक नियम) और सत्य तप से उत्पन्न हुए। यहाँ “ऋत” उस नैतिक और ब्रह्मांडीय व्यवस्था का प्रतीक है, जो समस्त सृष्टि को संचालित करती है। यह दर्शाता है कि नैतिकता केवल सामाजिक अनुशासन नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय संतुलन का अंग है। उपनिषदों में नैतिकता को आत्म-बोध और



सार्वभौमिक एकता से जोड़ा गया है। ईशोपनिषद् में कहा गया है—

**“यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥”**
(ईशोपनिषद् 7)

अर्थात् जब ज्ञानी व्यक्ति सभी प्राणियों को अपने ही स्वरूप में देखता है, तब उसके लिए न कोई मोह रहता है, न शोक। यह श्लोक स्पष्ट करता है कि जब एकत्व का बोध हो जाता है, तब द्वेष, हिंसा और अन्याय के लिए कोई स्थान नहीं रहता। इसी प्रकार, महाउपनिषद् में वैश्विक नैतिकता का अत्यंत प्रसिद्ध सूत्र मिलता है—

**“अयं बन्धुरयं नेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥”** (महाउपनिषद् 6.71)

अर्थात् “यह मेरा है, यह पराया है”—यह विचार संकीर्ण मन वालों का है; उदार हृदय वाले लोगों के लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार है। यह श्लोक वैश्विक नैतिकता के सामाजिक आयाम को स्पष्ट करता है, जहाँ समस्त मानवता के प्रति समान दृष्टि रखी जाती है। मनुस्मृति में भी नैतिक आचरण के मूल तत्वों को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है— **“अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः”** (मनुस्मृति 10.63) अर्थात् अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, शुद्धता और इन्द्रिय-निग्रह—ये नैतिकता के मूल तत्व हैं। ये सभी तत्व वैश्विक एकता को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। भगवद्गीता में भी नैतिकता और वैश्विक एकता का गहरा संबंध स्थापित किया गया है— **“अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च”** (भगवद्गीता 12.13) अर्थात् जो सभी प्राणियों से द्वेष रहित, मित्रवत् और करुणामय है, वही श्रेष्ठ है। इसी प्रकार— **“यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति”** (भगवद्गीता 6.30) अर्थात् जो व्यक्ति परमात्मा को सर्वत्र देखता है और सबको परमात्मा में देखता है, वह कभी अलग नहीं होता। यह दृष्टिकोण नैतिकता को आध्यात्मिक आधार प्रदान करता है। अथर्ववेद में सामाजिक नैतिकता और पारस्परिक सद्भाव को इस प्रकार व्यक्त किया गया है— **“सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः”** (अथर्ववेद 3.30.1) अर्थात् मैं तुम्हारे बीच हृदय की एकता, मन की समानता और द्वेष का अभाव स्थापित करता हूँ। यह मंत्र

सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों के महत्व को रेखांकित करता है। इन सभी वैदिक, उपनिषदिक और स्मृतिगत वचनों से यह स्पष्ट होता है कि नैतिकता और वैश्विक एकता परस्पर पूरक हैं। जब व्यक्ति एकत्व-बोध के आधार पर जीवन जीता है, तब उसका आचरण स्वतः नैतिक हो जाता है। अतः वैदिक दृष्टिकोण में नैतिकता कोई बाहरी बंधन नहीं, बल्कि आंतरिक चेतना का स्वाभाविक परिणाम है। यह चेतना ही मानव को अहिंसा, करुणा, सत्य और सहयोग के मार्ग पर अग्रसर करती है, जिससे वैश्विक एकात्मकता की स्थापना संभव होती है।

धार्मिक सहिष्णुता और बहुलता

वेदों में धार्मिक सहिष्णुता (Religious Tolerance) और बहुलता (Pluralism) का विचार अत्यंत गहन और उदार रूप में प्रतिपादित हुआ है। वैदिक चिंतन किसी एक मत, पंथ या उपासना-पद्धति को अंतिम सत्य नहीं मानता, बल्कि वह सत्य की विविध अभिव्यक्तियों को स्वीकार करता है। यही दृष्टिकोण वैश्विक एकात्मकता का बौद्धिक और सांस्कृतिक आधार बनता है, जहाँ विभिन्न मान्यताओं, विश्वासों और परंपराओं के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध मंत्र इस उदार और समावेशी दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है— **“आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः”** (ऋग्वेद 1.89.1) अर्थात् हमारे पास सभी दिशाओं से शुभ और कल्याणकारी विचार आएँ। यह मंत्र वैदिक परंपरा की बौद्धिक खुलापन और वैश्विक दृष्टि का परिचायक है, जो किसी भी प्रकार की संकीर्णता या एकांगी विचारधारा का विरोध करता है। वेदों में सत्य की बहुलता को स्वीकार करते हुए कहा गया है— **“एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति”** (ऋग्वेद 1.164.46) अर्थात् सत्य एक है, परंतु ज्ञानी उसे विभिन्न नामों से व्यक्त करते हैं। यह मंत्र धार्मिक सहिष्णुता का मूल आधार है, क्योंकि यह विभिन्न धार्मिक मतों और उपासना-पद्धतियों को एक ही परम सत्य की विविध अभिव्यक्तियाँ मानता है। यजुर्वेद में भी यह भावना परिलक्षित होती है कि मानव समाज में परस्पर सम्मान और समन्वय होना चाहिए— **“मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्”** (यजुर्वेद 36.18) अर्थात् सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखो। यह दृष्टिकोण न केवल सामाजिक समरसता को बढ़ावा देता है, बल्कि विभिन्न विश्वासों और विचारों के प्रति सहिष्णुता का भी आधार बनता है।



अथर्ववेद में भी विचारों की एकता और द्वेष-रहित सह-अस्तित्व पर बल दिया गया है— **“सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः”** (अथर्ववेद 3.30.1) अर्थात् मैं तुम्हारे बीच हृदय की एकता, मन की समानता और द्वेष का अभाव स्थापित करता हूँ। यह मंत्र यह संकेत देता है कि विविधता के बावजूद समाज में सहिष्णुता और समरसता बनाए रखना आवश्यक है। उपनिषदों में यह बहुलता और एकता का विचार और अधिक स्पष्ट हो जाता है। छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है— **“सर्वं खल्विदं ब्रह्म”** (छांदोग्य उपनिषद् 3.14.1) अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्म है। जब समस्त जगत को एक ही परम सत्य का रूप माना जाता है, तब विभिन्न धार्मिक दृष्टिकोणों के बीच भेदभाव का कोई आधार नहीं रह जाता। महाउपनिषद् का प्रसिद्ध वचन भी इसी भावना को व्यक्त करता है— **“वसुधैव कुटुम्बकम्”** (महाउपनिषद् 6.71 – पूर्ण श्लोक संदर्भ) यह विचार वैश्विक परिवार की अवधारणा को प्रस्तुत करता है, जहाँ सभी मनुष्य और सभी संस्कृतियाँ एक ही परिवार के सदस्य हैं। भगवद्गीता में भी इस सहिष्णुता और समन्वय की भावना को स्वीकार किया गया है— **“ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्”** (भगवद्गीता 4.11) अर्थात् जो जिस प्रकार मुझे प्राप्त करना चाहता है, मैं उसे उसी प्रकार स्वीकार करता हूँ। यह श्लोक यह स्पष्ट करता है कि ईश्वर तक पहुँचने के अनेक मार्ग हो सकते हैं, और सभी मार्ग अपने-अपने स्तर पर मान्य हैं। इन सभी वैदिक, उपनिषदिक और गीता के वचनों से यह स्पष्ट होता है कि धार्मिक सहिष्णुता और बहुलता वैदिक परंपरा के मूल तत्व हैं। यहाँ विविधता को संघर्ष का कारण नहीं, बल्कि समृद्धि का स्रोत माना गया है। अतः वैदिक दृष्टिकोण में धार्मिक सहिष्णुता केवल सहन करने की भावना नहीं, बल्कि सक्रिय रूप से विभिन्न विचारों, परंपराओं और विश्वासों को सम्मान देने का सिद्धांत है। यही दृष्टिकोण वैश्विक एकात्मकता को सुदृढ़ करता है और मानवता को एक ऐसे मार्ग की ओर ले जाता है, जहाँ विविधता में एकता और भिन्नता में समरसता स्थापित हो सके।

वैश्विक एकता और आध्यात्मिकता

वेदों में आध्यात्मिकता का स्वरूप अत्यंत व्यापक, समन्वित और अनुभवात्मक है। यहाँ आध्यात्मिकता का लक्ष्य केवल व्यक्तिगत मोक्ष या आत्म-कल्याण तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्त सृष्टि के साथ

एकत्व (Oneness) का प्रत्यक्ष अनुभव करना है। वैदिक दृष्टिकोण में आत्मा और ब्रह्म, जीव और जगत, व्यक्ति और विश्व—इन सभी के बीच कोई वास्तविक भेद नहीं है; बल्कि ये सभी एक ही सार्वभौमिक चेतना के विविध रूप हैं। इस प्रकार वैश्विक एकता का सर्वोच्च आयाम आध्यात्मिक अनुभव में ही निहित है।

ईशोपनिषद् का प्रसिद्ध मंत्र इस आध्यात्मिक एकता का मूल आधार प्रस्तुत करता है— **“ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्”** (ईशोपनिषद् 1) अर्थात् इस जगत में जो कुछ भी है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है। यद्यपि यह उपनिषद् का मंत्र है, तथापि इसका मूल भाव वेदों में ही निहित है—समस्त सृष्टि एक ही परम सत्ता से आच्छादित है, अतः किसी भी प्रकार का विभाजन या भेदभाव वास्तविक नहीं है। उपनिषदों में यह विचार और अधिक स्पष्ट और अनुभवात्मक रूप में प्रस्तुत होता है। छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है— **“सर्वं खल्विदं ब्रह्म”** (छांदोग्य उपनिषद् 3.14.1) अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्म ही है। यह कथन वैश्विक एकता का प्रत्यक्ष उद्घोष है, जहाँ जगत और ब्रह्म के बीच कोई भेद नहीं रह जाता। इसी उपनिषद् में प्रसिद्ध महावाक्य मिलता है— **“तत्त्वमसि”** (छांदोग्य उपनिषद् 6.8.7) अर्थात् “तू वही है”—यह जीव और ब्रह्म की एकता को स्थापित करता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में इस आध्यात्मिक एकता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है— **“अहं ब्रह्मास्मि”** (बृहदारण्यक उपनिषद् 1.4.10) अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ। यह आत्मा और परमात्मा की पूर्ण एकता का बोध कराता है, जो वैश्विक एकात्मकता का आंतरिक अनुभव है। इसी प्रकार, उपनिषदों में एकत्व के अनुभव से उत्पन्न नैतिक और आध्यात्मिक शांति को इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

“यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥”

(ईशोपनिषद् 7)

अर्थात् जब ज्ञानी व्यक्ति सभी प्राणियों को अपने ही स्वरूप में देखता है, तब उसके लिए न कोई मोह रहता है, न शोक। यह श्लोक स्पष्ट करता है कि आध्यात्मिक एकता का अनुभव व्यक्ति को समस्त द्वंद्वों से मुक्त कर देता है। वेदों में भी इस आध्यात्मिक एकता का बीज रूप विद्यमान है। ऋग्वेद में कहा गया है— **“हिरण्यगर्भः**



समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्” (ऋग्वेद 10.121.1) अर्थात् सृष्टि के प्रारंभ में वही एक परम तत्व विद्यमान था, जो समस्त जगत का स्वामी है। यह मंत्र इस बात को स्थापित करता है कि समस्त अस्तित्व एक ही मूल चेतना से उत्पन्न हुआ है। भगवद्गीता में इस आध्यात्मिक एकता को अत्यंत सरल और व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया गया है—

**“यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥”**
(भगवद्गीता 6.30)

अर्थात् जो मुझे (परमात्मा को) सर्वत्र देखता है और सबको मुझमें देखता है, वह मुझसे कभी अलग नहीं होता। इसी प्रकार— **“समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्”** (भगवद्गीता 13.27) अर्थात् परमेश्वर सभी प्राणियों में समान रूप से स्थित है। यह समदृष्टि वैश्विक एकता का आध्यात्मिक आधार है। मुण्डक उपनिषद् में भी ब्रह्म की सर्वव्यापकता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है— **“ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतः चोत्तरेण”** (मुण्डक उपनिषद् 2.2.11)

अर्थात् यह अमर ब्रह्म आगे, पीछे, दाएँ और बाएँ—सर्वत्र व्याप्त है। इन सभी वैदिक, उपनिषदिक और गीता के वचनों से यह स्पष्ट होता है कि आध्यात्मिकता और वैश्विक एकता परस्पर अभिन्न हैं। आध्यात्मिक अनुभव का वास्तविक अर्थ है—समस्त सृष्टि में उसी एक चेतना का दर्शन करना। अतः वैदिक दृष्टिकोण में आध्यात्मिकता केवल व्यक्तिगत साधना का विषय नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक अनुभव है, जो मानव को संकीर्णता, भेदभाव और अहंकार से ऊपर उठाकर समस्त विश्व के साथ एकात्म भाव स्थापित करने की प्रेरणा देता है। यही वैश्विक एकात्मकता का सर्वोच्च और परम स्वरूप है।

समकालीन संदर्भ में प्रासंगिकता

वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में मानव समाज अनेक जटिल चुनौतियों से जूझ रहा है—सामाजिक विभाजन, धार्मिक असहिष्णुता, सांस्कृतिक टकराव, आर्थिक असमानता तथा पर्यावरणीय संकट। तकनीकी प्रगति और वैश्वीकरण के बावजूद, मानवता के समक्ष शांति, संतुलन और सह-अस्तित्व की समस्या आज भी उतनी ही गंभीर है।

ऐसे समय में वेदों में प्रतिपादित वैश्विक एकात्मकता (Universal Oneness) की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक और मार्गदर्शक सिद्ध होती है। यह अवधारणा न केवल दार्शनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह व्यावहारिक जीवन, सामाजिक नीति और वैश्विक शासन के लिए भी एक संतुलित दृष्टिकोण प्रदान करती है। वेदों का मूल संदेश यह है कि समस्त सृष्टि एक ही चेतना का विस्तार है, अतः विभाजन और संघर्ष का कोई वास्तविक आधार नहीं है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध मंत्र इस विचार को स्पष्ट करता है— **“एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति”** (ऋग्वेद 1.164.46) यह मंत्र आज के बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक समाज में सहिष्णुता और समन्वय का आधार प्रस्तुत करता है। यह सिखाता है कि सत्य एक है, भले ही उसकी अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में हो—अतः विभिन्न विचारधाराओं के बीच संवाद और सम्मान आवश्यक है।

इसी प्रकार, सामाजिक और वैश्विक एकता के लिए सामूहिक चेतना का महत्व वेदों में इस प्रकार व्यक्त किया गया है— **“संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्”** (ऋग्वेद 10.191.2) यह मंत्र आज के समय में सहयोगात्मक नेतृत्व (collaborative leadership), सामूहिक निर्णय-निर्माण और वैश्विक साझेदारी की आवश्यकता को रेखांकित करता है। समकालीन पर्यावरणीय संकट—जैसे जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता का हास और प्राकृतिक संसाधनों का अति-दोहन—भी यह संकेत देते हैं कि मानव और प्रकृति के बीच संतुलन बिगड़ चुका है। वेद इस संतुलन को पुनः स्थापित करने का मार्ग प्रस्तुत करते हैं। अथर्ववेद में कहा गया है— **“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः”** (अथर्ववेद 12.1.12) यह मंत्र पर्यावरणीय नैतिकता का आधार है, जो यह सिखाता है कि पृथ्वी केवल संसाधन नहीं, बल्कि हमारी माता है—अतः उसका संरक्षण हमारा कर्तव्य है। वेदों में शांति और संतुलन की व्यापक अवधारणा भी आज के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है— **“ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिः...”** (यजुर्वेद 36.17) यह मंत्र वैश्विक शांति को केवल मानव समाज तक सीमित नहीं रखता, बल्कि समस्त ब्रह्मांड के लिए शांति की कामना करता है। यह दृष्टिकोण आज के अंतरराष्ट्रीय संबंधों, पर्यावरणीय नीति और सतत विकास के लिए अत्यंत उपयोगी है। वेद हमें यह सिखाते हैं कि—



- विविधता में एकता संभव है, और यही मानवता की शक्ति है।
- प्रकृति और मानव का संबंध पारस्परिक और संतुलनात्मक है, न कि शोषणात्मक।
- शांति, सहयोग और सह-अस्तित्व ही दीर्घकालिक विकास और समृद्धि का आधार हैं।

इन सिद्धांतों को और सुदृढ़ करते हुए उपनिषदों में कहा गया है— **“सर्वं खल्विदं ब्रह्म”** (छांदोग्य उपनिषद् 3.14.1) अर्थात् सम्पूर्ण जगत एक ही परम सत्य का रूप है। जब यह दृष्टिकोण समाज में स्थापित होता है, तब भेदभाव, हिंसा और असमानता स्वतः समाप्त होने लगती है। भगवद्गीता में भी इस समदृष्टि को इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

**“विद्या विनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥”** (भगवद्गीता 5.18)

यह श्लोक सामाजिक समानता और वैश्विक नैतिकता का आधार प्रस्तुत करता है, जो आज के मानवाधिकार और सामाजिक न्याय की अवधारणाओं से भी मेल खाता है। अतः यह स्पष्ट है कि वेदों में प्रतिपादित वैश्विक एकात्मकता की अवधारणा आज के समय में केवल एक दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक आवश्यकता है। यह मानवता को एक ऐसे मार्ग की ओर प्रेरित करती है, जहाँ समरसता, सह-अस्तित्व और संतुलन स्थापित हो सके। फिर भी, इस विषय पर अभी व्यापक और गहन अनुसंधान की आवश्यकता है। वेदों में निहित इन सिद्धांतों को समकालीन संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित करना और उन्हें सामाजिक, राजनीतिक एवं पर्यावरणीय नीतियों में लागू करना एक महत्वपूर्ण शोध-क्षेत्र है। अतः वेदों की वैश्विक एकात्मकता की अवधारणा न केवल अतीत की धरोहर है, बल्कि भविष्य के लिए एक मार्गदर्शक प्रकाश भी है, जो मानवता को एक अधिक समरस, संतुलित और शांतिपूर्ण विश्व की ओर अग्रसर कर सकती है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वेदों में वैश्विक एकात्मकता की अवधारणा अत्यंत व्यापक, गहन और बहुआयामी है। यह केवल दार्शनिक चिंतन तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक, नैतिक,

आध्यात्मिक तथा पारिस्थितिक सभी स्तरों पर मानव जीवन का मार्गदर्शन करती है। वेदों में प्रतिपादित यह दृष्टिकोण इस मूल सिद्धांत पर आधारित है कि समस्त सृष्टि एक ही परम चेतना—ब्रह्म—का विस्तार है, अतः सभी प्राणी, प्रकृति और ब्रह्मांड परस्पर संबद्ध और एकीकृत हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के विभिन्न मंत्रों में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि वैदिक ऋषियों ने मानवता को एक ऐसे जीवन-दर्शन की ओर प्रेरित किया, जिसमें विविधता के भीतर एकता को स्वीकार किया गया है। “एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति” जैसे मंत्र धार्मिक सहिष्णुता और बहुलता को प्रोत्साहित करते हैं, जबकि “संगच्छध्वं संवदध्वं” सामाजिक सहयोग और सामूहिक चेतना का आधार प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार “माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः” पर्यावरणीय संतुलन और प्रकृति के साथ आत्मीय संबंध को स्थापित करता है। नैतिक दृष्टि से भी वेदों में अहिंसा, करुणा, सत्य और समदृष्टि जैसे मूल्यों को वैश्विक एकता के आधार के रूप में स्वीकार किया गया है। “मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि” जैसे मंत्र यह स्पष्ट करते हैं कि जब तक मानव सभी प्राणियों के प्रति संवेदनशील और करुणामय नहीं होगा, तब तक वास्तविक वैश्विक शांति संभव नहीं है। आध्यात्मिक स्तर पर उपनिषदों और गीता में प्रतिपादित “सर्वं खल्विदं ब्रह्म”, “अहं ब्रह्मास्मि” और “यो मां पश्यति सर्वत्र” जैसे सिद्धांत यह दर्शाते हैं कि वैश्विक एकता का वास्तविक अनुभव आत्मबोध के माध्यम से ही संभव है। यह अनुभव व्यक्ति को संकीर्णता, भेदभाव और अहंकार से मुक्त कर सार्वभौमिक दृष्टि की ओर ले जाता है। समकालीन वैश्विक संदर्भ में, जहाँ मानव समाज विभिन्न प्रकार के संकटों से जूझ रहा है, वेदों की यह एकात्मक दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक और उपयोगी सिद्ध हो सकती है। यह न केवल वैचारिक स्तर पर, बल्कि व्यावहारिक रूप से भी मानवता को एक समरस, संतुलित और शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्था की ओर अग्रसर कर सकती है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वेदों में निहित वैश्विक एकात्मकता की अवधारणा मानवता के लिए एक स्थायी और सार्वभौमिक मार्गदर्शक सिद्धांत है। भविष्य में इस विषय पर और अधिक गहन, तुलनात्मक एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान की आवश्यकता है, जिससे वैदिक सिद्धांतों को आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक और पर्यावरणीय संदर्भों में प्रभावी रूप से लागू किया जा सके।



संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद (सायण भाष्य सहित), 1.164.46
2. ऋग्वेद, 10.191.2
3. ऋग्वेद, 10.191.4
4. ऋग्वेद, 1.89.1
5. ऋग्वेद, 10.121.1
6. ऋग्वेद, 10.82.6
7. ऋग्वेद, 10.9.1
8. यजुर्वेद, 1.5
9. यजुर्वेद, 36.17
10. यजुर्वेद, 36.18
11. अथर्ववेद, 12.1.12
12. अथर्ववेद, 3.30.1
13. अथर्ववेद, 7.52.1
14. छांदोग्य उपनिषद्, 3.14.1
15. छांदोग्य उपनिषद्, 6.8.7
16. बृहदारण्यक उपनिषद्, 1.4.10
17. बृहदारण्यक उपनिषद्, 4.4.19
18. ईशोपनिषद्, मंत्र 1
19. ईशोपनिषद्, मंत्र 7
20. मुण्डक उपनिषद्, 2.2.11
21. तैत्तिरीय उपनिषद्, शिक्षावल्ली
22. महाउपनिषद्, 6.71
23. भगवद्गीता, 3.14
24. भगवद्गीता, 4.11
25. भगवद्गीता, 5.18
26. भगवद्गीता, 5.29
27. भगवद्गीता, 6.30
28. भगवद्गीता, 6.32
29. भगवद्गीता, 12.13
30. भगवद्गीता, 13.27
31. मनुस्मृति, 10.63